भक्तराज ध्रुव

(‘आदर्श चरितमाला’ का पाँचवाँ पुष्प)
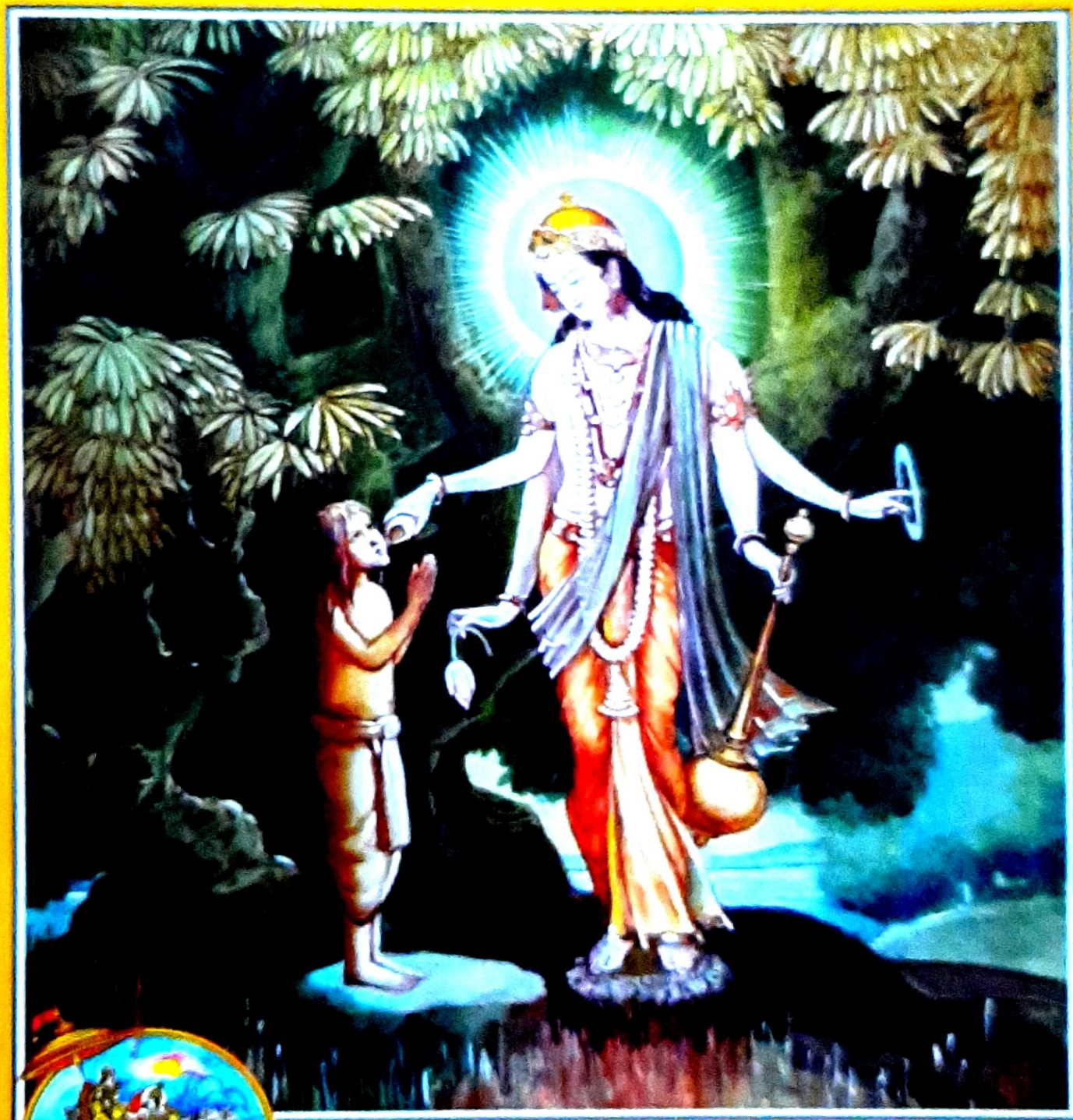
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

भक्तराज ध्रुवके नाम और चरित्रसे हम सभी परिचित हैं। एक छोटी-सी घटनासे ध्रुवके जीवनमें एक महान् क्रान्ति हो गयी और वही उनके भगवत्साक्षात्कारका कारण भी बन गयी। छः वर्षका छोटा बालक भगवान्‌के पथमें किस निष्ठाके साथ जा रहा है, यह हम सभीके लिये सर्वथा अनुकरणीय है। साधनकालमें कैसे-कैसे प्रलोभन उसके सामने आये, पर एक भी उसे डिगा नहीं सका और अन्तमें स्वयं भक्तवत्सल भगवान्‌को उसके सम्मुख प्रकट होना पड़ा। साधना भी उसकी कितनी सरल एवं सरस थी—द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप और सब अवस्थाओंमें भगवान् नारायणका ध्यान! इसी साधनासे ध्रुवके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये—केवल छः महीनेके भीतर।

इन्हीं भक्तराज ध्रुवका चरित्र इस छोटी-सी पुस्तकमें बहुत ही सीधी-सादी परन्तु प्रभावशाली भाषामें हमारे परम सम्मान्य पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीने लिखा है। महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण तथा अन्य पुराणोंका आधार लेकर यह बहुत सुन्दर वस्तु पण्डितजीने पाठकोंके सम्मुख रखी है। आशा है, ध्रुवके चरित्रसे पाठकोंका अन्तःकरण शुद्ध होगा तथा उनके चित्तमें साधनाकी लहरें उठेंगी।

विनीत

सम्पादक

श्रीहरिः शरणम्

भक्तराज ध्रुव

(१)

स्वायम्भुव मनुके दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तानपादकी दो स्त्रियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। सुरुचिका पुत्र था उत्तम और सुनीतिका ध्रुव। राजा उत्तानपाद सुरुचिपर आसक्त थे, एक प्रकारसे उसके अधीन थे। वे चाहनेपर भी सुनीतिके प्रति अपना प्रेम नहीं प्रकट कर सकते थे। ध्रुव और उत्तमकी उम्र अभी बहुत थोड़ी—केवल पाँच वर्षोंकी थी।

राजसभा लगी हुई थी। महाराज उत्तानपाद सुरुचिके साथ सिंहासनपर बैठे हुए थे। उनकी गोदमें उत्तम खेल रहा था और वे उसे बड़े स्नेहसे दुलार रहे थे। सुनीतिने पुत्रका साज-शृंगार करके धाईके लड़कोंके साथ उन्हें खेलनेके लिये भेज दिया था। वे खेलते-खेलते राजसभामें आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि मेरा भाई उत्तम पिताकी गोदमें बैठा हुआ है, अतः उनकी भी इच्छा हुई कि मैं चलकर पिताकी गोदमें बैठूँ। उन्होंने जाकर पिताके चरण छूए। राजाने उनको आशीर्वाद दिया। वे अपने पिताकी गोदमें बैठना ही चाहते थे कि सुरुचिने उन्हें डाँट दिया। उसने कहा—'ध्रुव ! तुम बड़े नटखट हो। जहाँ तुम्हें बैठनेका अधिकार नहीं है, वहाँ क्यों बैठना चाहते हो ? इस सिंहासनपर बैठनेके लिये बहुत पुण्य करने पड़ते हैं। यदि तुम पुण्यात्मा होते तो मेरे गर्भसे जन्म लेते। भाग्यहीना सुनीतिके गर्भमें क्यों आते ? उत्तम मेरे गर्भसे पैदा हुआ है। वह राज्यका

उत्तराधिकारी है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते। यदि तुम्हें अपने पिताकी गोदमें बैठना हो तो जाकर तपस्या करो, भगवान्‌की आराधना करो और मेरे गर्भसे जन्म लो। तब दूसरे जन्ममें तुम्हें यह गोद, यह सिंहासन प्राप्त हो सकता है।'

ध्रुव रोने लगे। यद्यपि वे बालक ही थे, तथापि उनमें क्षत्रिय-तेजकी कमी न थी। उचित-अनुचित कुछ भी उनके मुँहसे न निकला। उनकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगे। सुरुचिमें आसक्ति होनेके कारण उत्तानपाद भी चुप रह गये। उन्होंने न तो ध्रुवको गोदमें ही लिया और न समझाया ही। ध्रुव बहुत ही उदास होकर अपनी माता सुनीतिके पास आये। उस समय ध्रुवके आँसू सूख गये थे। उनका चेहरा कुछ तमतमा उठा था। उनके ओंठ फरक रहे थे। माताने बड़े स्नेहसे उन्हें गोदमें बैठाकर पूछा—'बेटा! किसने तुम्हारा अपमान किया है? तुम्हारा अपराध करना तो तुम्हारे पिताका अपराध करना है। बताओ, किससे तुम्हें दुःख पहुँचा है? तुम्हारे दुःखका कारण क्या है?' ध्रुवने सारी बातें कहीं।

सुनीतिने लम्बी साँस लेकर कहा—'बेटा! सुरुचिका कहना सत्य है। मैं अभागिनी हूँ और तुम मेरी ही कोखसे पैदा हुए हो। यदि तुम पुण्यवान् होते तो दूसरे लोग तुम्हें इस प्रकार अपमानित नहीं कर सकते, परंतु तुम सुरुचिसे बुरा मत मानना। क्योंकि तुम एक ऐसी माताके गर्भसे पैदा हुए हो और उसके दूधसे पुष्ट हुए हो, जिसे महाराज अपनी पत्नी कहनेमें भी संकोच करते हैं। सौतेली माँ होनेपर भी सुरुचिने एक बात बड़े महत्त्वकी कही

है। सत्य ही भगवान्‌की आराधना किये बिना तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकती।' ध्रुवने अपनी मातासे बहुत-से बालसुलभ प्रश्न किये। उन्होंने पूछा—'माँ ! जब तुम दोनों ही मेरी माँ हो, तब पिताजी सुरुचिसे ही अधिक प्रेम क्यों करते हैं ? तुमसे क्यों नहीं करते ? हम दोनों ही राजकुमार हैं, फिर उत्तम उत्तम क्यों ? मैं अभागा क्यों ? वह क्यों राजाकी गोदमें बैठ सकता है और मैं क्यों नहीं बैठ सकता ?'

सुनीतिने कहा—'बेटा ! उन्होंने पूर्वजन्ममें बड़े-बड़े पुण्य किये हैं, तपस्या की है, भगवान्‌की आराधना की है। इसलिये वे राजाके प्रेमास्पद हैं, वे उनकी गोदमें बैठ सकते हैं। हमने तपस्या नहीं की है, उनकी आराधना नहीं की है। इसीसे वह पद हमें नहीं प्राप्त होता। भगवान् विष्णुकी आराधनासे ही सब कुछ प्राप्त होता है। उन्होंने उनकी आराधना की है, इसलिये उन्हें सब कुछ प्राप्त है। तुम उनकी बातोंसे दुःखी मत होना। बेटा ! वे सच कहती हैं।' अपनी माताकी बात सुनकर ध्रुवके पुराने संस्कार जग उठे। यद्यपि उन्हें मालूम नहीं था, तथापि उनके मनमें पहलेकी जो भक्ति-भावना थी, उसपरका परदा हट गया। वे भगवद्भजनके लिये उत्सुक हो गये।

उन्होंने सुनीतिसे कहा—'माता ! मैं समझता था कि पिताजीसे बढ़कर और कोई नहीं है और वे मुझपर प्रसन्न नहीं हैं तो जीवनभर मैं दुःखी ही रहूँगा। परंतु यदि उनसे भी बड़ा कोई है और आज मालूम हो गया कि उनसे भी बड़ा है तो आज ही मैं उसे प्रसन्न करूँगा और वह पद प्राप्त करूँगा जो अबतक किसीको प्राप्त नहीं हुआ है। तुम केवल मेरी एक सहायता करो,

बस. मुझे भगवान्‌की आराधना करनेके लिये यात्रा करनेकी अनुमति दे दो। मुझपर भगवान्‌को प्रसन्न ही समझो।' पुत्रकी बात सुनकर माताका हृदय स्नेहसे भर गया। उसने कहा—'बेटा! अभी तुम्हारी उम्र ही कितनी है। अभी तो तुम बच्चोंके साथ खेलने-खाने योग्य हो। मैं तुम्हें वनमें जानेकी अनुमति कैसे दे सकती हूँ ? तुम्हीं मेरे प्राणाधार हो। भगवान्‌की न जाने कितनी मनौती करके मैंने तुम्हें प्राप्त किया है। तुम घरके बाहर खेलने जाते हो तब मेरे प्राण छटपटाने लगते हैं। मैं तुम्हें वनमें जानेकी आज्ञा नहीं दे सकती। तुम घरमें रहकर दान करो, पुण्य करो, सबका हित करो, वैरियोंका भी उपकार करो, तुमपर भगवान् प्रसन्न हो जायँगे।'

ध्रुवने कहा—'माता ! तुम्हारा कहना सत्य है तथापि मेरा हृदय अब विलम्ब सहन करनेको तैयार नहीं है। मेरा कोई अनिष्ट नहीं होगा, भगवान् मेरे रक्षक हैं। माता ! तुम अभागिनी नहीं, परम भाग्यवती हो। तुम्हारी कोखसे पैदा होकर मैं भगवान्‌को प्रसन्न करूँगा। उत्तमको राजसिंहासन प्राप्त हो। उसके प्रति मेरे मनमें तनिक भी द्वेष नहीं है। मैं अब किसी व्यक्तिका दिया हुआ राज्य नहीं ले सकता। मेरा सम्बन्ध तो सीधे भगवान्‌से होगा। आजतक मेरे माता-पिता तुमलोग थे, आजसे मेरे माता-पिता भगवान् विष्णु हुए*।'

ध्रुवकी माता साधारण माता नहीं थीं, वे ध्रुवकी माता थीं। उन्हें भगवान्‌पर विश्वास था। वे जानती थीं और उनकी दृढ़

---

* अद्य यावत् पिता माता त्वं चोत्तानपदो विभुः।
अद्यप्रभृति मे माता पिता विष्णुर्न संशयः॥

धारणा थी कि भगवान् मेरे पुत्रकी रक्षा करेंगे। उन्होंने कहा—'बेटा! मैं तुम्हें भगवान्की आराधनासे नहीं रोकती। यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरी जीभ सैकड़ों टुकड़े होकर गिर जाय*। भगवान्की आराधनासे क्या नहीं हो सकता? आराधनासे ही ब्रह्मा ब्रह्मा हुए हैं, तुम्हारे दादा स्वायम्भुव मनुने उन्हींकी आराधनासे लौकिक, पारलौकिक और मोक्षपद प्राप्त किये हैं। तुम अनन्य निष्ठासे भगवान्का आश्रय लो, वे तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे।' माताने भगवान्पर विश्वास करके ध्रुवको अनुमति दी और अपने हाथोंसे गूँथकर उन्हें नीले कमलोंकी माला पहनायी। उनके साथ जानेके लिये अपने सैकड़ों आशीर्वाद भेज दिये और ध्रुव अपनी माताके चरणोंका स्पर्श एवं उनकी परिक्रमा करके वहाँसे चल पड़े।

कोई भगवान्की ओर चले और भगवान् उसकी सहायता न करें, ऐसा हो ही नहीं सकता। ध्रुव नगरके बाहर निकलकर आये, सोच रहे थे कि कहाँ जायँ, कहाँ भगवान् मिलें, कि इतनेमें ही उन्हें देवर्षि नारदके दर्शन हुए। वे अपने हाथमें वीणा लिये हुए भगवान्के सुमधुर नामोंका संकीर्तन कर रहे थे। ध्रुवने जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। नारदने ध्रुवके सिरपर हाथ रखकर प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। उनसे क्या छिपा था। वे सोचने लगे, कितना तेजस्वी बालक है। अभी इसी अवस्थामें इसके मनमें इतना बल है। उन्होंने कहा—'ध्रुव ! अभी तो तुम्हारे खेलने-खानेका समय

---

* विष्णोराराधने नाहं वारये त्वां सुपुत्रक।
जिह्वा मे शतधा याति यदि त्वां वारयामि भोः॥

है, नन्हे-से बालकका सम्मान और अपमान क्या ! संसारमें अनेकों प्रकारकी घटनाएँ घटती हैं और घटती रहेंगी। उनसे अज्ञानी ही दुःखी होते हैं, बुद्धिमान् कभी दुःखी नहीं होता। भगवान् जैसे रखें, वैसे ही रहना चाहिये। जिन्हें तुम प्रसन्न करना चाहते हो, उनका मिलना बहुत कठिन है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कठोर-से-कठोर तपस्या करके भी अनेक जन्मोंमें उन्हें नहीं प्राप्त कर सके हैं। इसलिये यह हठ छोड़ो, समय आनेपर तपस्या भी कर लेना। जो प्रारब्धसे प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। जो अपनेसे अधिक गुणी हैं, उन्हें देखकर प्रसन्न होना चाहिये। जो अपनेसे कम गुणी हैं, उनसे सहानुभूति होनी चाहिये। जो अपने समान हैं, उनसे मित्रता करनी चाहिये। फिर दुःखका कोई कारण नहीं।'

देवर्षि नारदकी ये बातें ध्रुवके मनमें नहीं बैठीं। उन्होंने कहा—'भगवन्! आपने जिस समता और शान्तिका उपदेश किया है, वह बहुत ही उत्तम है। तथापि हमारे-जैसे लोगोंके लिये तो वह बहुत ही कठिन है। मैं बड़ा ढीठ हूँ, मेरे हृदयमें क्षात्र-तेज प्रज्वलित हो रहा है। आपकी शीतल वाणी मेरे हृदयमें नहीं ठहरती। आप मुझे वह रास्ता बतलावें जिससे मैं त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सकूँ। आप ब्रह्माके पुत्र हैं। त्रिलोकीका हित करनेके लिये ही आप विचरण करते रहते हैं, भगवान्की भक्ति और भगवान्के नामोंका प्रचार ही आपका एकमात्र काम है। आप मुझे अवश्य भगवान्के पानेका मार्ग बताइये।'

ध्रुवकी बात सुनकर नारदने बहुत ही प्रसन्न होकर कहा—'भगवान्के चरणोंकी उपासना ही सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। लोक-परलोक, स्वर्ग-अपवर्ग जो कुछ तुम चाहते

हो, सब उसीसे प्राप्त होगा। तुम्हारी माताने तुम्हें बड़ा ही सुन्दर मार्ग बतलाया है। तुम यहाँसे जाओ मथुरा, यमुनाके पावन तटपर! भगवान्‌का वह नित्य निवासस्थान है। त्रिकाल यमुनामें स्नान करना, नित्यकृत्य करके सुस्थिर आसनपर बैठ जाना और प्राणायाम करना। विषयोंका चिन्तन छोड़कर शुद्ध चित्तसे भगवान्‌का ध्यान करना। मन-ही-मन देखना कि भगवान् मुझपर प्रसन्न होकर प्रकट हुए हैं। उनका मुख बड़ा ही प्रसन्न है, मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं, आँखें प्रेमभरी हैं, तोतेकी चोंच-जैसी नासिका, धनुष-जैसी भौंहें, मरकत-मणिके समान सुन्दर कपोल, पंद्रह-सोलह वर्षकी अवस्था, लाल-लाल ओंठ, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स, गलेमें वनमाला, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मसे युक्त चार हाथ, पीताम्बर धारण किये हुए, किरीट-कुण्डल आदि अनेक आभूषणोंसे आभूषित श्यामसुन्दर, भक्तवत्सल करुणावरुणालय भगवान् मुझपर—सारे जगत्‌पर अपार करुणाकी वर्षा कर रहे हैं। उन्हें देखनेमें अपार आनन्द आ रहा है, हृदयके कमलपर खड़े हैं और उनकी नख-ज्योति अनेकों सूर्यके समान चारों ओर फैल रही है। इस प्रकार भगवान्‌के मङ्गलमय रूपका ध्यान करोगे तो थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारा मन लग जायगा और इतना रस आयेगा कि फिर बाहर निकलेगा ही नहीं। तुम्हें मैं एक बड़ा ही गुप्त और महत्त्वपूर्ण मन्त्र बतलाता हूँ। वह यह है—*'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय !'* तुम प्रेमसे इसीका जप करना ! तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।'

देवर्षि नारद ध्रुवको उपासनाकी पूरी विधि बतलाकर वहाँसे चले गये और ध्रुवने उनका आशीर्वाद ग्रहण करके मथुराकी यात्रा की।

किसी-किसी पुराणमें ऐसी कथा आती है कि जब ध्रुव अपने महलसे निकले, तब उन्हें रास्ता तो मालूम था ही नहीं। अपने उपवनमें चले आये। वहाँ वे सोचने लगे क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मेरी सहायता करेगा ? यही सब वे सोच रहे थे कि उन्हें अपने उपवनमें ही सप्तर्षियोंके दर्शन हुए। सिर नीचा करके ध्रुव उनके पास गये और अञ्जलि बाँधकर उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। ध्रुवने कहा—'ऋषियो ! मैं महाराज उत्तानपादका पुत्र हूँ। मेरी माताका नाम सुनीति है। मैं घर छोड़कर भगवान्‌की आराधना करना चाहता हूँ, आपलोग मेरी सहायता करें।' इस तेजस्वी बालकके सरल स्वभाव और मधुर आकृतिको देखकर ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—'बेटा ! तुम्हारे वैराग्यका क्या कारण है ? जिनकी अभिलाषाएँ पूर्ण नहीं होतीं उन्हें वैराग्य हो जाता है। तुम तो सप्तद्वीपपति सम्राट्‌के पुत्र हो। तुम्हें भला क्या चाहिये ?' ध्रुवने अपनी सारी कथा सुनायी और कहा—'जिस स्थानका उपभोग किसी और राजाने न किया हो, जो सबसे ऊँचा हो तथा इन्द्रादिके लिये भी दुर्लभ हो वह स्थान मुझे चाहिये। आप भगवान्‌की आराधनाका मार्ग बतलाइये।'

सप्तर्षियोंने एक स्वरसे पृथक्-पृथक् इस बातका समर्थन किया कि 'सम्पूर्ण सिद्धियोंका मूल परम पुरुष परमात्माकी उपासना ही है। उन्होंने ही सारे संसारको धारण कर रखा है और उन्हींके भ्रू-विलाससे सारा जगत् स्थिर है। उनकी उपासना करो। तुम्हारी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी।' ध्रुवने कहा—'ऋषियो ! मैं बालक हूँ और साथ ही राजकुमार हूँ। मैं भगवान् विष्णुकी कठिन आराधना किस प्रकार कर सकूँगा ? जो सम्पूर्ण फलोंको

देनेवाले हैं, उन्हें प्रसन्न करना अवश्य ही कठिन होगा। मैं क्या करूँ ? मुझे आपलोगोंकी क्या आज्ञा है ?' सप्तर्षियोंने कहा—'बेटा ! चिन्ताकी कोई बात नहीं है। चलते-फिरते, सोते-जागते, बैठते-उठते सब अवस्थाओंमें सर्वत्र भगवान्‌का स्मरण किया जा सकता है।* उनके द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए उनके चतुर्भुज रूपका ध्यान करो। तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।' सप्तर्षियोंने ध्रुवको उपासनाकी विधि बतलाकर वहाँसे यात्रा की और ध्रुव भी वहाँसे चलकर मथुराके पास यमुनातटपर आये।

* तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा।
शयानेनोपविष्टेन वेद्यो नारायणः सदा॥

यमुनाके किनारे पहुँचकर ध्रुवने पहले दिन उपवास किया और दूसरे दिनसे वे विधिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करने लगे। पहले महीनेमें तीन-तीन दिनपर कैथ और बेरके फल खा लेते तथा निरन्तर भगवान्‌के द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌के चतुर्भुज रूपका ध्यान करते रहे। दूसरे महीनेमें हर छठे दिन सूखे पत्ते और कुछ तिनके खा लेते तथा प्रेमसे भगवान्‌की आराधना करते रहे। तीसरे महीनेमें हर नवें दिन पानी पी लेते और चौथे महीनेमें तो उन्होंने जल भी छोड़ दिया, केवल वायु पीकर ही रहे। सो भी प्राणवायु इस प्रकार वशमें हो गया था कि केवल बारहवें दिन ही वायु ग्रहण करते। निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते। पाँचवें महीनेमें प्राणवायु सर्वथा वशमें हो गया, उन्होंने श्वास लेना भी बंद कर दिया और अचलभावसे ठूँठके समान एक पैरसे खड़े हो गये। परमात्माके अतिरिक्त उन्हें और कुछ दीखता ही नहीं था। सारे ब्रह्माण्डोंके, सम्पूर्ण प्रकृतिके एकमात्र अधीश्वर भगवान्‌में ही उनका चित्त लग गया, उनके पैरके अँगूठेसे पीड़ित होकर पृथ्वी धँसने लगी, विश्वात्मासे एक हो जानेके कारण पृथ्वी उनका भार वहन करनेमें असमर्थ हो गयी, उनके श्वास बंद हो जानेसे सबके श्वास बंद हो गये, समुद्र और नदियाँ क्षुब्ध हो गयीं। भूख, प्यास, वर्षा, घाम, आँधी आदिका उन्हें पता ही कैसे चलता, जब वे शरीरको ही भूल गये थे। उनके मन, प्राण और उनका व्यक्तित्व भगवान्‌के चरणोंमें लीन हो गया था।

देवताओंने विघ्न डालनेका निश्चय किया। बड़ी-बड़ी राक्षसियाँ उन्हें डरानेके लिये आतीं, परंतु वे उनकी ओर देखते ही नहीं थे, तब राक्षसियाँ उन्हें कैसे डरा पातीं। देवताओंने दूसरा उपाय सोचा, वे ध्रुवकी माता सुनीतिका रूप बनाकर उन्हें विचलित करनेकी चेष्टा करने लगे। मायामयी सुनीति अपनी आँखोंसे आँसू बहाती हुई उनके सामने आ खड़ी हुई, वह बड़ी करुणाके साथ कहने लगी—'बेटा! तुम्हें मैंने बड़े कष्टसे पाया है। शरीरको सुखानेवाली यह तपस्या छोड़ दो। मैं दीन हूँ, अकेली हूँ, अनाथ हूँ, मुझे मत छोड़ो। सौतकी बातोंमें पड़कर तुम मेरी उपेक्षा मत करो। तुम्हीं मेरे आधार हो। कहाँ तुम्हारी पाँच वर्षकी अवस्था और कहाँ यह दारुण तप! छोड़ दो, इससे कुछ फल नहीं मिलेगा, यह केवल तुम्हारा हठ है। अभी खेलो, फिर पढ़ना, भोग भोगना और चौथेपनमें तपस्या भी करना। मेरी प्रसन्नता ही तुम्हारा धर्म है। यह अधर्म मत करो, मेरी बात मानो, नहीं तो तुम्हारे सामने ही मैं अपने प्राण त्याग दूँगी।' वह ध्रुवके सामने रोती हुई न जाने क्या-क्या बक रही थी; परंतु ध्रुवको इन बातोंका पता भी न था। उनका मन भगवान्‌में इस प्रकार तल्लीन हो गया था कि उन्होंने देखकर भी नहीं देखा।

मायामयी सुनीतिने जोरसे चिल्लाकर कहा—'बेटा! इस भीषण वनमें ये भयानक राक्षस शस्त्र लेकर आ रहे हैं, चलो भाग चलें।' यह कहती हुई वह भाग गयी। बड़े भयानक-भयानक राक्षस प्रकट हो गये और 'मारो-काटो' कहकर ध्रुवको डराने लगे। परंतु उनकी सब विभीषिका व्यर्थ गयी। एकाग्रचित्त ध्रुवने भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ देखा ही नहीं, उनके सामने एक भी छल-प्रपञ्च न चल सका। देवता लोग व्याकुल हो गये।

उन्होंने शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुकी शरण ली और उनसे निवेदन किया। उन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो ! पुरुषोत्तम ! हम ध्रुवकी तपस्यासे जल रहे हैं। उनकी दिनोंदिन अभिवृद्धि होती जा रही है, आखिर वे चाहते क्या हैं ? वे इन्द्र होना चाहते हैं, सूर्य होना चाहते हैं या और कुछ होना चाहते हैं ? प्रभो ! आप प्रसन्न हों, हमारे कलेजेका काँटा निकाल दें, उन्हें किसी प्रकार तपस्यासे विरत करें।' भगवान्‌ने कहा—'वह बालक न इन्द्र होना चाहता है, न सूर्य होना चाहता है और न तुमलोगोंको भय पहुँचाना चाहता है, वह जो चाहता है सो मैं उसे दूँगा। तुमलोग उससे डरो मत। मैं उसकी तपस्या पूर्ण किये देता हूँ।' भगवान्‌की आज्ञा पाकर देवताओंने अपने-अपने धामकी यात्रा की और भगवान् ध्रुवके सामने प्रकट हुए।

उस समय ध्रुव ध्यानमग्न थे। उन्हें पता नहीं चला कि भगवान् गरुड़पर सवार होकर मेरे सामने आये हैं और मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब भगवान्‌ने देखा कि ध्रुवका ध्यान स्वयं नहीं टूटता, तब उन्होंने उनके ध्यानसे अपना स्वरूप खींच लिया। ध्रुव छटपटा उठे। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और देखा कि जिस रूपका वे ध्यान करते थे, वही रूप, वही साक्षात् भगवान् उनके सामने खड़े हैं। वे सहसा भगवान्‌के चरणोंमें लोट गये, उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे प्रेमाश्रु बह निकले। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो ध्रुव अपनी आँखोंसे भगवान्‌को पी जाना चाहते हैं, मुँहसे चूम लेना चाहते हैं और हाथोंसे लिपट जाना चाहते हैं। उन्होंने सम्हलकर सोचा कि मैं भगवान्‌की स्तुति करूँ। परंतु उनकी बुद्धि यह न सोच

सकी कि भगवान्‌की स्तुति किस प्रकार की जाय। बोलनेके लिये उनके ओंठ फरक रहे थे, परंतु वे बोल न सकते थे। क्या बोलते, पाँच वर्षके बच्चे ही तो थे।

भगवान्‌ने कहा—'ध्रुव ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम क्या चाहते हो ?' ध्रुवने कहा—'भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिये कि मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। मैं आपका बालक हूँ, आपकी स्तुति कैसे करूँ ? ब्रह्मा, शिव और बड़े-बड़े ऋषि भी आपकी स्तुति नहीं कर सकते। मैं तो अभी बच्चा हूँ। मेरी इच्छा पूरी कीजिये। मुझे स्तुति करनेकी शक्ति दीजिये। भगवान्‌ने हँसकर प्रेमसे अपने ज्ञानमय शङ्खको ध्रुवके कपोलसे सटा दिया। उसी समय उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी, उन्हें सम्पूर्ण विद्याओंका रहस्य मालूम हो गया। वे प्रसन्नतासे भगवान्‌की स्तुति करने लगे।

ध्रुवने कहा—'प्रभो ! आपने मेरे हृदयमें प्रवेश करके मेरी ज्ञानशक्तिको जगा दिया है। संसारमें जितने प्रकारके ज्ञान हो रहे हैं, वह सब आपकी ही शक्तिसे तो हो रहे हैं। न केवल ज्ञान ही, प्रत्युत सम्पूर्ण कर्म भी आपकी ही शक्तिसे हो रहे हैं। ये हाथ, ये पैर, ये प्राण सब-के-सब आपकी ही शक्तिसे जीवित हैं, चेष्टा कर रहे हैं। मेरे हृदयकी ज्ञानज्योति ! सबके अंदर रहनेवाले आत्मदेव ! मैं आपके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ। भगवन् ! आपके अतिरिक्त और है ही क्या ? आप अपनी माया-शक्तिसे सम्पूर्ण तत्त्वोंको बनाकर उनमें स्वयं प्रवेश करते हैं, उन वस्तुओंके भीतर जीवरूपसे अवतीर्ण होते हैं और एक होनेपर भी अनेक होकर, निर्गुण होनेपर भी अनन्त गुणोंसे युक्त होकर

अनेक लकड़ियोंमें एक अग्निकी भाँति आप अनेकों रूपसे दीखते हैं। नाथ ! आपकी दी हुई शक्तिसे ही विश्व बना हुआ है। आपकी ही कृपासे यह तमोगुणकी घोर निद्रासे जाग्रत् हुआ है। यह सब आपकी शरणमें है। आपके ही वरद कर-कमलोंकी छत्रछायामें यह पनप रहा है, इसी संसारमें रहनेवाला एक कृतज्ञ जीव आपको कैसे भूल सकता है? यदि भूल जाता है तो इससे बढ़कर और कृतघ्नता हो ही क्या सकती है? वे लोग मायामें भूले हुए हैं और अवश्य भूले हुए हैं, जो आपके चरणोंकी उपासना नहीं करते अथवा करके भी संसारकी ही कोई वस्तु, जिसका केवल एक क्षण शरीरके द्वारा भोग किया जा सकता है, माँगते हैं। आपके चरणोंका आश्रय लेकर आपकी आराधना करके इस संसारसे सर्वदाके लिये छुटकारा पाया जा सकता है। तब जान-बूझकर बन्धनको ही क्यों वरण किया जाय? ये बन्धन, ये सांसारिक सुख तो नरकमें भी प्राप्त हो सकते हैं।'

'प्रभो! मेरी ऐसी धारणा है और वह पूर्णतः सत्य है कि आपके चरण-कमलोंके ध्यानसे, आपके भक्तोंके द्वारा आपकी अथवा भक्तोंकी कथा सुननेसे जिस अनिर्वचनीय आनन्दका लाभ होता है, वह अपनी महिमामें स्थित ब्रह्ममें भी नहीं होता। फिर जो कराल कालके द्वारा निगले जा रहे हैं, उन्हें या उनमें उस सुखका लेश भी कैसे हो सकता है? भगवन्! मैं निरन्तर आपका चिन्तन किया करूँ और जो आपके भक्त हों, आपके चिन्तनमें ही रत हों, जिनका अन्तःकरण निर्मल हो गया हो उन्हींकी संगति, उन्हींका सहवास मुझे प्राप्त होता रहे। मैं आपके गुण, नाम और लीलाके कीर्तन-श्रवणमें इस प्रकार मत्त हो जाऊँ,

उस अमृतकी धारामें बाहर-भीतर इस प्रकार डूब जाऊँ कि पता ही न चले कि यह संसारका चक्कर चल रहा है या बंद हो गया। कमलनयन ! अशरणशरण ! मदनमोहन! जिनके हृदयमें आपके चरणारविन्दोंकी दिव्य सुगन्धि भरी रहती है, उसके समास्वादमें ही जिनका लोभी हृदय निरन्तर लगा रहता है, वे भक्त, आपके वे प्रेमपात्र संसारकी वस्तुओंका स्मरण ही नहीं करते। क्या सत्य है, क्या मिथ्या है, ये विचार उनके हृदयमें आते ही नहीं, वास्तवमें वे जगत्‌को भूलकर आपके अनन्त प्रेमके अगाध समुद्रमें ही डूबते-उतराते रहते हैं।'

'प्रभो ! सर्वात्मन्! ये सब आपके ही तो रूप हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, देवता-दानव, स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन सब आपके ही तो स्थूल रूप हैं। आपका स्वरूप इनसे परे भी है, इनसे सूक्ष्म भी है। परंतु बुद्धि वहाँतक पहुँचती नहीं, चित्त उसका चिन्तन नहीं कर सकता, मन उसके आकलनमें असमर्थ है, वाणीकी तो चर्चा ही क्या है ? मैं उसे क्या जानूँ ? मैं तो आपके इस सर्वात्मक रूपको ही नमस्कार करता हूँ। प्रलयके समय सारी सृष्टिको अपने अंदर लेकर आप अपने अनन्त स्वरूपमें सो जाते हैं, सृष्टिके समय अपने नाभिकमलसे ब्रह्माका सृजन कर देते हैं। आपके ही प्रकाशसे, आपकी ही ज्योतिसे सारे प्रकाश, सारी ज्योतियाँ प्रकाशित हो रही हैं। मैं आपकी शरण हूँ। आप नित्यमुक्त परमशुद्ध ज्ञानस्वरूप अनन्त एकरस आत्मतत्त्व हैं। आप सबके साक्षी होनेपर भी साक्षित्वके धर्मसे निर्लिप्त हैं। आपके आनन्द-मात्र निर्विकार अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। दीनबन्धु ! जो सत्यसंकल्प सत्यस्वरूप आपका

भजन करते हैं; उनकी आशाएँ सत्य हो जायँ, उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायँ, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? आप तो अनुग्रह-विग्रह ही हैं। आपकी मूर्ति ही करुणामयी है, आप भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये सर्वदा कातर रहते हैं। जैसे गौ अपने बछड़ेसे प्रेम करती है, उसकी रक्षा-दीक्षा स्वयं करती है, वैसे ही आप अपने सभी शिशुओंका ध्यान रखते हैं।'

'स्वामिन्! मैंने अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये आपकी आराधना की है। परंतु आपकी अपार कृपाका क्या कहना है? बड़े-बड़े साधु और मुनियोंको भी जिस रूपके दर्शन नहीं होते, उनके दर्शन मुझे प्राप्त हो रहे हैं, जैसे कोई काँच ढूँढ़ रहा हो और उसे दिव्य रत्नकी प्राप्ति हो जाय। अब मैं कृतार्थ हो गया! अब मैं वर नहीं चाहता। प्रभो! आपके इन सुर-मुनि-दुर्लभ चरणारविन्दोंका दर्शन प्राप्त करके फिर मैं अपनी पहले मनमें रही हुई कामनाओंकी पूर्ति कैसे चाह सकता हूँ? भला, कल्पवृक्षका प्रसाद प्राप्त करके कोई भूसीकी याचना करता है? अब मैं इन चरणोंको नहीं छोड़ूँगा। मोक्षके मूलस्वरूप अपने स्वामीके शरणागत होकर मैं अब बाह्य सुखोंका उपभोग नहीं कर सकता। जब रत्नाकर ही अपना स्वामी हो तब काँचका गहना क्यों पहना जाय? इसलिये अब मैं आपसे कोई वर नहीं माँगता। केवल आपके चरणकमलोंकी भक्ति बनी रहे। मुझे यही वर दीजिये। मैं बारम्बार यही वर माँगता हूँ।'*

---

* स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं त्वां दृष्टवान् साधुमुनीन्द्रगुह्यम्।
काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरान्न याचे॥

भगवान्‌ने कहा—'प्यारे ध्रुव ! तुम ठीक कह रहे हो। यद्यपि तुम्हारे मनमें पहले कामना थी, परंतु अब नहीं है। मेरे दर्शनके बाद कामनाएँ नहीं रहतीं। तथापि मैं तुम्हें बहुत ही ऊँचा स्थान दूँगा। तुम्हें मेरी भक्ति तो प्राप्त है ही और प्राप्त रहेगी ही तथापि मेरे आग्रहसे, मेरी आज्ञासे तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा। एक तो तुमने इसी कामनासे मेरी आराधना की है, वह पूर्ण होनी चाहिये और दूसरे पूर्वजन्ममें भी तुम्हारे मनमें यह वासना थी, पिछले जन्ममें तुम ब्राह्मण थे, मेरे प्रति तुम्हारी श्रद्धा थी, माता-पिताकी तुम सेवा करते थे और अपने धर्मपर आरूढ़ थे। कुछ समयके बाद एक राजकुमारसे तुम्हारी मित्रता हो गयी। वह युवक था, सुन्दर था और उसके पास भोगकी अनेकों सामग्रियाँ थीं। उसकी देखा-देखी तुम्हारे मनमें भी राजकुमार होनेकी वासना हो गयी। उसीके चिन्तनमें तुम्हारी मृत्यु हुई और तुम राजकुमार हुए। मुझपर तुम्हारी आस्था थी और धर्ममें श्रद्धा थी, अतः तुम श्रेष्ठ राजवंशमें पैदा हुए और वहाँ भी मुझे नहीं भूल सके।'

'इस जन्ममें तुम्हें राजा होना ही पड़ेगा। इतनी बात है कि तुम मुझे कभी नहीं भूलोगे। छत्तीस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् तुम्हारे लिये विमान आवेगा और तुम उसपर चढ़कर

अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे दृष्ट्वा दृढं नाथ न हि त्यजामि।
कामान्न याचे स हि कोऽपि मूढो यः कल्पवृक्षात्तुषमात्रमिच्छेत्॥
त्वां मोक्षबीजं शरणं प्रपन्नः शक्नोमि भोक्तुं न बहिःसुखानि।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे विभूषणं काचमयं न युक्तम्॥
अतो न याचे वरमीश युष्मत्पादाब्जभक्तिः सततं ममास्तु।
इमं वरं देववर प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे॥

ग्रह-नक्षत्रोंसे ऊपर त्रिलोकीके केन्द्र ध्रुवस्थानमें जाओगे और वहाँ तुम कल्पपर्यन्त रहोगे। जगत्‌का ज्योतिश्चक्र और सप्तर्षि आदि तुम्हें दाहिने करके विचरण करेंगे। एक प्रकारसे वे सब-के-सब तुम्हारी प्रदक्षिणा करेंगे। कल्पके अन्तमें तुम मेरे लोकमें आओगे और मेरा वह स्वरूप प्राप्त करोगे, जिसे पाकर फिर लौटना नहीं होता। तुम्हारा लौकिक जीवन भी बड़ा ही उपकारी होगा। बहुत-से यज्ञ करोगे और तुम्हारे साथ तुम्हारी माताकी भी सद्‌गति होगी। अब तुम अपने पिता उत्तानपादके पास जाओ। वे तुम्हारे लिये अधीर हो रहे हैं।'

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और ध्रुवने वहाँसे यात्रा की।

संसारमें प्रत्येक मनुष्यके सामने दो प्रकारकी बातें आती हैं— एक तो सुनीतिकी और दूसरी सुरुचिकी। जो रुचि शुभ नीतिका विरोध करती है, वह रुचि कुरुचि है, हम अपनी उदारतासे भले ही उसे सुरुचि कहें। सुरुचिके अनुसार चलनेपर उत्तम सुखभोग कुछ दिनोंके लिये प्राप्त हो सकता है। परंतु ध्रुव अथवा स्थायी लाभ सुनीतिके अनुसार चलनेसे ही होता है। सुनीति सुरुचिकी विरोधिनी नहीं है, बल्कि सुनीतिके साथ सुरुचिका संयोग हो जाय तो आनन्दकी और भी अभिवृद्धि हो जाय। परंतु मनुष्यका मन इतना चञ्चल है, इतना कमजोर है कि वह क्षणिक सुखके लिये रुचिके अधीन हो जाता है और सुन्दर नीतिका परित्याग कर देता है। जब नीतिकी उपेक्षा कर दी गयी, तब ध्रुव लाभ कैसे हो सकता है ! वह तो भगवान्‌के पास चला ही जायगा। क्योंकि ध्रुवता भगवान्‌में ही है, रुचिके अनुसार चलनेमें, सुनीतिके विरोधमें, असंयममें नहीं।

राजा उत्तानपादकी आँखें तब खुलीं, जब उन्हें मालूम हुआ कि ध्रुव भगवान्‌की आराधना करनेके लिये चला गया। वे व्याकुल हो उठे। सोचने लगे, क्या यह जीवन क्षणिक और उत्तम कहे जानेवाले तुच्छ भोगोंके लिये ही है ? क्या मैं ध्रुव अथवा नित्य वस्तुसे वञ्चित हो गया ? क्या अब मेरा जीवन ध्रुवहीन हो गया ? मेरी आँखोंका ध्रुवतारा, मेरे हृदयका धन मेरा लाड़ला ध्रुव कहाँ है ? क्या वह घोर जंगलमें चला गया ? अभी तो उसे नगरसे बाहर निकलनेका मार्ग भी नहीं मालूम है। उसे कभी पैदल चलना भी नहीं पड़ा है। क्या खाना चाहिये, क्या नहीं

खाना चाहिये; जंगली वस्तुओंकी उसे पहचान भी नहीं है ! पाँच वर्षका नन्हा-सा बच्चा क्या खायेगा, क्या पीयेगा ? कहीं जंगली जानवर उसे खा न जायँ ! उसका अनिष्ट न कर दें, राजाका हृदय अनेकों प्रकारकी चिन्ताओंसे व्याकुल हो गया।

भगवान्‌के भक्त चारों ओर विचरण किया ही करते हैं। ऐसा एक भी स्थान नहीं जहाँ उनकी दृष्टि न हो। वे देखते रहते हैं, कब कहाँ किसे सहायताकी आवश्यकता है ? ध्रुव घरसे निकले और उन्हें देवर्षि नारदके दर्शन हो गये। उन्हें उपासनाकी विधि बता दी गयी। वे उपासनाके लिये चले गये। देवर्षि नारदने सोचा, सुरुचिकी आसक्तिके कारण राजा उत्तानपादने भरी सभामें ध्रुवकी उपेक्षा कर दी। वे सबके सामने सुरुचिकी बातोंका विरोध नहीं कर सके। इससे क्या होता है। वे स्वायम्भुव मनुके पुत्र हैं। उनकी बुद्धि निर्मल है, उनका हृदय उदार है। उस समय नहीं, परंतु अब उनके हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है; चलकर उन्हें समझाना चाहिये, उन्हें निश्चिन्त करना चाहिये। वे ध्रुवके लिये इतने व्याकुल रहेंगे तो सम्भव है, ध्रुवकी तपस्यामें भी कुछ उचाट हो जाय। देवर्षि नारद राजा उत्तानपादके पास आये।

राजाने आगे जाकर देवर्षिका स्वागत किया। उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा की। परंतु उत्तानपादसे एक शब्द भी बोला नहीं गया। उनकी आँखें नीची थीं, ओंठ सूख रहे थे और वे संकोचसे गड़े जा रहे थे। देवर्षि नारदने पूछा—'राजन्! कुशल तो है? तुम इतने चिन्तित कैसे, क्यों हो रहे हो। तुम्हारा मुँह क्यों सूख रहा है? क्या तुम्हारी कोई कामना पूर्ण नहीं हो रही है? क्या किसी धर्मके पालनमें कोई बाधा पड़ रही है? क्या तुम्हारा अर्थ धर्मके विरुद्ध जा रहा है?' राजा

उत्तानपादने कहा—'भगवन्! आप संतोंकी कृपासे मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हैं। भगवान्की अपार दया है। अर्थ और धर्मका निर्वाह भी हो रहा है; परन्तु एक ऐसा अपराध मुझसे हो गया है, जिसके कारण मैं बहुत ही व्याकुल हो रहा हूँ। देवर्षे! मैं बड़ा नीच हूँ। स्त्रीके अधीन रहनेवाला हृदयहीन हूँ। अभी मेरा पाँच बरसका बालक जो कि बड़ा ही होनहार, बड़ा ही बुद्धिमान् है, आज मेरे ही कारण कहीं चला गया। उसका कोई दोष नहीं था, मेरी ही दुष्टता थी। वह प्रेमसे, ममतासे मेरी गोदमें आना चाहता था, पर मैंने उसका अभिनन्दनतक नहीं किया। वह पैदल चलनेसे थक गया होगा, उसे भूख लगी होगी, उसका मुँह कुम्हला गया होगा, वह कहीं पेड़के नीचे जमीनपर ही सो गया होगा। नन्हा-सा बालक है, कहीं किसी जानवरने उसपर आक्रमण न कर दिया हो। देवर्षे ! मेरा कलेजा फटा जा रहा है; मैं अब अपनेको सम्हाल नहीं सकता ! मेरी रक्षा कीजिये।'

देवर्षि नारदने कहा—'राजन्! शोक मत करो! जो भगवान्के मार्गमें चलता है, उसका अनिष्ट कभी हो ही नहीं सकता। भगवान् उसके रक्षक हैं। जलमें, थलमें, वनमें, आकाशमें, सर्वत्र भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। तुम्हें अपने बालकके प्रभावका पता नहीं है। थोड़े ही दिनोंमें, पाँच-छः महीनोंमें ही उसे भगवान्की वह कृपा प्राप्त होगी, जो बहुतोंको हजारों वर्षोंमें प्राप्त नहीं हुई है। उसे वह स्थान प्राप्त होगा जो अबतक किसीको प्राप्त नहीं हुआ है। चिन्ता मत करो, भगवान्पर विश्वास करो। भगवान् परम दयालु हैं। उनके स्वभाव, गुण और लीलाओंका चिन्तन करो। तुम्हारा कल्याण होगा।' देवर्षि नारदने अपनी वीणाकी मीड़ें छेड़ दीं। उनकी सुमधुर स्वरलहरीसे सारा

राजमहल गूँज उठा। *'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे'* की रसमयी ध्वनिने क्षणभरमें ही वहाँका सारा विषाद दूर कर दिया। देवर्षि नारद चले गये और राजा उत्तानपाद ध्रुवके कल्याणके लिये, ध्रुवकी प्राप्तिके लिये भगवान्की आराधना करते हुए अपने दिन बिताने लगे। उन्होंने सुरुचिकी अधीनता त्याग दी, सुनीतिकी अधीनता स्वीकार की, सुनीति उनकी सेवा करती, उनकी रक्षा करती और जब वे व्याकुल हो जाते, तब उन्हें समझाती। एक क्षणके लिये भी उन्हें नहीं छोड़ती। सुनीतिकी गति भगवान्की ओर थी और उसने अपने पतिदेवको भी भगवान्की ओर गतिशील कर दिया। अब भला ध्रुव इन्हें क्यों नहीं मिलेंगे?

भगवान्का दर्शन कर लेनेके पश्चात् उनकी आज्ञासे जब ध्रुव अपनी राजधानीके लिये चले, तब उनका मन प्रसन्न नहीं था। भगवान्को पाकर फिर संसारकी ओर जाना पड़े, यह प्रसन्नताकी बात कैसे हो सकती है ? यद्यपि ध्रुवको भगवान्की आज्ञा प्राप्त थी और इसीलिये वे जा भी रहे थे, परंतु उनके मनमें यह बात बार-बार आती थी कि मेरे ही दोषसे भगवान्ने मुझे इस कामके लिये भेजा है। यदि मेरे मनमें कामना न होती, वासना न होती तो भगवान् मुझे इस ओर कैसे भेजते ? ध्रुव मन-ही-मन कहते जा रहे थे कि 'सनक, सनन्दन आदि ऊर्ध्वरेता परमर्षिगण बड़ी कठिन समाधि लगाकर अनेक जन्मोंमें जिन्हें प्राप्त कर सके, उन्हें केवल छः महीनेमें प्राप्त करके मैं उनके चरणोंसे अलग हो गया, मेरी बुद्धि कितनी दूषित है। देखो तो मुझ अभागेकी दुष्टता, संसारसे मुक्त करनेवालेके चरणकमलोंमें जाकर मैंने संसारकी कुछ तुच्छ वस्तुएँ प्राप्त कीं। अवश्य असहिष्णु देवताओंने मेरी बुद्धि दूषित कर दी, नहीं तो मैं इतना दुष्ट कैसे हो जाता ? मैंने

देवर्षि नारदको सद्गुरुके रूपमें प्राप्त करके भी उनकी वाणीका यथार्थ ग्रहण नहीं कर सका। मैं मायाके जंगलमें फँस गया, मेरी दृष्टि भेददर्शिनी हो गयी और भगवान्के अतिरिक्त और कुछ न होनेपर भी मैंने दूसरेकी सत्ता मानकर ईर्ष्या की तथा मैं दुःखी हुआ। मैंने वैसी ही प्रार्थना की है, वैसी ही वस्तु ली है, जैसे आयु न रहनेपर वरदानमें चिकित्साका वरण किया जाय। भगवान्को प्रसन्न करके संसारसे छुटकारा पाना चाहिये और मैंने संसारको ही प्राप्त किया। इससे बढ़कर मेरी मूढ़ता और क्या होगी ?' ध्रुव यही सब सोचते-सोचते अपने नगरके पास आ गये।

ध्रुवका हृदय शुद्ध था। भगवान्के दर्शनके बाद उनकी सम्पूर्ण वासनाएँ नष्ट हो चुकी थीं। वे भगवान्की ही आज्ञासे राज्यके लिये आ रहे थे। तथापि उन्हें अपना ही दोष दीख रहा था, वे अपनेको ही कोस रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंकी धूलि जिन्हें प्राप्त हो चुकी है, वे भगवान्के दास्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते। यदि उन्हें बिना चाहे और कुछ मिल भी जाय तो वे उसका आदर नहीं करते, उसमें मोहित नहीं होते और उसमें अपना ही दोष देखते हैं। * ध्रुव अपने दोष देखते-देखते व्याकुल हो गये, भगवान्का नाम उनके मुँहसे निकलने लगा; भगवान्की दिव्यमूर्ति उनके हृदयमें आ गयी, मानो वे भगवान्की वाणी सुनने लगे। उनके अन्तस्तलसे आवाज आयी—'ध्रुव ! तुम इतने व्यथित क्यों

---

* न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो
रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो
यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः॥

देवर्षि नारदको सद्गुरुके रूपमें प्राप्त करके भी उनकी वाणीका यथार्थ ग्रहण नहीं कर सका। मैं मायाके चंगुलमें फँस गया, मेरी दृष्टि भेददर्शिनी हो गयी और भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ न होनेपर भी मैंने दूसरेकी सत्ता मानकर ईर्ष्या की तथा मैं दुःखी हुआ। मैंने वैसी ही प्रार्थना की है, वैसी ही वस्तु ली है, जैसे आयु न रहनेपर वरदानमें चिकित्साका वरण किया जाय। भगवान्‌को प्रसन्न करके संसारसे छुटकारा पाना चाहिये और मैंने संसारको ही प्राप्त किया। इससे बढ़कर मेरी मूढ़ता और क्या होगी ?' ध्रुव यही सब सोचते-सोचते अपने नगरके पास आ गये।

ध्रुवका हृदय शुद्ध था। भगवान्‌के दर्शनके बाद उनकी सम्पूर्ण वासनाएँ नष्ट हो चुकी थीं। वे भगवान्‌की ही आज्ञासे राज्यके लिये आ रहे थे। तथापि उन्हें अपना ही दोष दीख रहा था, वे अपनेको ही कोस रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंकी धूलि जिन्हें प्राप्त हो चुकी है, वे भगवान्‌के दास्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते। यदि उन्हें बिना चाहे और कुछ मिल भी जाय तो वे उसका आदर नहीं करते, उसमें मोहित नहीं होते और उसमें अपना ही दोष देखते हैं। * ध्रुव अपने दोष देखते-देखते व्याकुल हो गये, भगवान्‌का नाम उनके मुँहसे निकलने लगा; भगवान्‌की दिव्यमूर्ति उनके हृदयमें आ गयी, मानो वे भगवान्‌की वाणी सुनने लगे। उनके अन्तस्तलसे आवाज आयी—'ध्रुव ! तुम इतने व्यथित क्यों

---

* न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो
रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो
यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः॥

हो रहे हो ? यदि मैं तुम्हें इसी प्रकार रखकर राजाके वेशमें ही देखकर और ऋषि-नक्षत्रोंके द्वारा सम्मानित पाकर प्रसन्न हो रहा हूँ तो तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है ? क्या मेरी प्रसन्नतामें प्रसन्न होना तुम्हारा धर्म नहीं है? तुम मेरी प्रसन्नतामें प्रसन्न रहो, किसी बातकी चिन्ता मत करो !' ध्रुवकी सारी चिन्ता दूर हो गयी। वे प्रेमसे भगवान्‌का नाम लेते हुए अपने नगरके पास पहुँचे ही थे कि लोगोंने जाकर महाराज उत्तानपादको सूचना दी।

पहले तो उत्तानपादको विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, मुझ नीचके ऐसे भाग्य कहाँ! मुझे ऐसे मङ्गलका अवसर कब प्राप्त हो सकता है, परंतु कुछ ही क्षणोंमें उन्हें देवर्षि नारदकी बात याद आ गयी, वे हर्षसे फूल उठे। पहले-पहल संवाद लाने-वालेको उन्होंने अपने गलेसे बहुमूल्य हार उतारकर दे दिया। ब्राह्मण, कुलगुरु, मन्त्री और भाई-बन्धुओंके साथ सोनेके रथोंपर सवार होकर उन्होंने स्वागतयात्रा की। उनका हृदय पुत्रको देखनेके लिये लालायित था। एक क्षणका विलम्ब भी उन्हें असह्य हो रहा था, वे नगरके बाहर पहुँच गये। सुनीति और सुरुचि दोनों ही अलग-अलग पालकियोंमें सवार होकर उत्तमके साथ ध्रुवकी अगवानी करनेके लिये गयीं। उस समय सुनीतिके हृदयकी क्या अवस्था थी, उसके मातृहृदयमें कितना उल्लास था, कितनी प्रफुल्लता थी, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका शरीर तो पालकीमें था, परंतु उसका हृदय पहले ही ध्रुवके पास पहुँचकर अपने प्यारे पुत्रका आलिङ्गन कर रहा था।

नगरके बगीचेके पास पहुँचकर उत्तानपादने देखा कि ध्रुव पैदल ही आ रहा है। उसके बाल सिरपर बिखरे हुए हैं, सँभाल न होनेके कारण उनका रंग भूरा हो गया है। शरीर दुबला-पतला

है, परंतु सारे शरीरसे एक अलौकिक ज्योति—एक दिव्य छटा निकल रही है। वे रथसे कूद पड़े और प्रेम-विह्वल होकर ध्रुवके पास पहुँच गये। अभी ध्रुव उनके चरणोंका स्पर्श भी नहीं कर पाये थे कि राजा उत्तानपादने उनको अपने हृदयसे लगा लिया। उनका हृदय उछलने लगा, साँस बढ़ गयी और निष्पाप ध्रुवके स्पर्शसे उनकी आत्मा आनन्दमग्र हो गयी। उनकी अश्रुधारासे ध्रुवका सिर भीग गया। कुछ समयके बाद जब सचेत होकर उन्होंने ध्रुवको छोड़ा, तब ध्रुवने उनके चरणोंमें सिर रख दिया। उनका आशीर्वाद प्राप्त करके ध्रुवने अपनी माताओंके चरण छूए और सुरुचिने उन्हें प्रेमसे उठाकर गोदमें बैठा लिया। ध्रुवके स्पर्शसे उसका सारा दुर्भाव जाता रहा और सच्चे हृदयसे उसने ध्रुवको आशीर्वाद दिया। सुनीतिकी दशाका तो वर्णन ही क्या किया जाय, वह अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको अपनी गोदमें बैठाकर परम सुखी हुई। उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा और आँखोंसे प्रेमके आँसू बह-बहकर ध्रुवका अभिषेक करने लगे।

सबने ध्रुवका सम्मान किया। स्वयं भगवान् जिसपर प्रसन्न हैं, उसका सम्मान कौन नहीं करेगा ? सभी उनका अभिनन्दन करने लगे, सभी उनकी प्रशंसा करने लगे, सभी उनके प्रति प्रेम प्रकट करने लगे। राजाने उत्तमके साथ ध्रुवको सर्वश्रेष्ठ हाथीपर बैठाया और उन्हें लेकर अपने महलकी यात्रा की। सारा नगर सजाया गया था। स्थान-स्थानपर लोग भेंट देते थे और पुष्प, चन्दन, दधि, अक्षतसे ध्रुवका सत्कार करते थे। आनन्दके बाजे बज रहे थे,स्त्रियाँ मङ्गल-गायन गा रही थीं। ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे थे और भक्तराज ध्रुवका अभ्युदय देखकर देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे थे।

भगवान्‌की आराधनासे सब कुछ हो सकता है, अबतक होता आया है और आगे भी होता रहेगा। संसारके इतिहासमें ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है कि किसीने आराधना करके अपनी अभिलषित वस्तु न प्राप्त की हो। सभी कुछ-न-कुछ चाहते हैं। सभी कुछ-न-कुछ पानेके लिये अशान्त हैं। सभी अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु किसीको भी पूर्ण सफलता मिलती नहीं दीखती। इसका कारण क्या है ? सफलताका जो वास्तविक मार्ग है, उसपर बहुत लोगोंकी दृष्टि ही नहीं है। अपनी बुद्धिकी शक्तिसे; अपने शरीरकी शक्तिसे अथवा अपने धन-जनकी शक्तिसे अबतक पूरी सफलता न किसीको प्राप्त हुई है और न हो सकती है; क्योंकि वे शक्तियाँ ही अपूर्ण हैं। बिखरी हुई हैं। इधर-से-उधर भटका करती हैं। उनके द्वारा कोई काम पूरा हो ही कैसे सकता है। अल्प शक्तिके द्वारा अल्पकालस्थायी अल्प कार्य ही हो सकते हैं, परंतु यदि अनन्तकी शक्तिसे, अनन्तके बलसे कोई कार्य किया जाय तो वह चाहे उसका स्वरूप जो हो, अनन्ततक पहुँचा देता है। लौकिक, पारलौकिक मोक्ष सभी प्रकारके कार्य भगवान्‌की आराधनाके द्वारा ही वास्तवमें पूर्ण होते हैं, अन्यथा अधूरे और क्षणिक होते हैं। आधुनिक प्रवृत्तियाँ अधिकांश ऐसी ही हैं।

प्राचीन कालमें ऐसी बातें नहीं थीं। ब्रह्माकी इच्छा हुई कि सृष्टि करूँ। उन्हें आज्ञा मिली—'ब्रह्मा ! तप करो, भगवान्‌की आराधना करो, तब तुम्हें सृष्टिकी शक्ति प्राप्त होगी।' उन्होंने आराधना की। अनन्त सत्ता, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और

अनन्त शक्तिके साथ उन्होंने अपने-आपको मिला दिया, आराधनाके फलस्वरूप वे अभिलषित सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। आराधनाके पहले उन्होंने जब-जब सृष्टि करनेकी चेष्टा की थी, तब-तब अवाञ्छनीय सृष्टिका ही विस्तार हुआ था।

उनके पुत्र स्वायम्भुव और शतरूपाने जब उनके सृष्टिकार्यमें सहयोग देनेका विचार किया तो पहले उन्हें यही आज्ञा दी गयी कि 'तप करो, भगवान्‌की आराधना करो।' आराधनाके द्वारा ही वे कर्म करनेकी क्षमता प्राप्त कर सके, प्रजापति हो सके और तो क्या, उनकी ही प्रार्थना और आराधनासे स्वयं शक्ति प्रकट हुई तथा उन्हींकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने पृथ्वीको धारण किया। यह एक सत्य है और पूर्ण सत्य है कि भगवान्‌की आराधनासे ही पूर्णता प्राप्त होती है। ब्रह्मासे लेकर स्वायम्भुव मनुतक इस सत्यका अनुसरण ठीक-ठीक होता रहा और कार्य-संचालनमें भी कोई अड़चन नहीं आयी।

उत्तानपाद स्वायम्भुव मनुके ही पुत्र थे; परंतु इन्होंने अपने पिताकी भाँति भगवान्‌की आराधना नहीं की थी। ये सुरुचिके अधीन हो गये थे, इन्होंने सुनीतिकी उपेक्षा कर दी थी। यही कारण था कि इन्हें इनकी अभीष्ट वस्तु नहीं मिल रही थी। ध्रुवके तपसे, ध्रुवकी आराधनासे और ध्रुवकी सिद्धिसे उत्तानपादकी आँखें बहुत कुछ खुल गयीं। उन्होंने देखा कि मेरा ही लड़का, मेरी ही गोदमें पला, मेरा ही पाला-पोसा ध्रुव भगवान्‌को प्राप्त कर ले और मैं न प्राप्त कर सकूँ यह कितनी लज्जाकी बात है। वे आस्तिक तो पहलेसे ही थे, भोग-विलासमें आसक्तिके कारण भगवान्‌का भजन लगनके साथ नहीं कर पाते थे, अब

उनकी लगनके लिये सामने ही उच्चतम आदर्श उपस्थित हो गया था। वे दिन रात देखते ध्रुवके मुँहसे किस प्रकार भगवान्‌के नाम निकल रहे हैं, ध्रुव किस प्रकार पूजा कर रहा है, भगवान्‌के ध्यानमें ध्रुव किस प्रकार तन्मय हो जाता है और यह सब होनेपर भी माताकी, पिताकी और कर्तव्यकी सेवामें किस प्रकार संलग्न रहता है। उन्हें ध्रुवसे बड़ी सहायता मिलती। राजकाजके साथ ही वे प्राय: भगवत्स्मरण करते रहते।

ध्रुवकी दिनचर्या बड़ी ही अद्भुत थी। वे चार घड़ी रात रहते ही अपनी शय्यापर उठकर बैठ जाते और हाथ-पैर, मुँह धोकर, आचमन करके भगवान्‌के स्मरणमें लग जाते। उनकी आँखोंके सामने भगवान्‌का अनन्त सर्वात्मरूप प्रकट हो जाता और वे उसके रसमें, आनन्दमें मस्त हो जाते, अनुभव करते कि विश्वके अणु-अणुमें, परमाणु-परमाणुमें भगवान् व्याप्त हैं तथा वे सब और मैं भी भगवान्‌में ही डूब-उतरा रहे हैं। बल्कि यह सब भगवान्‌का ही व्यक्त रूप है। सब भगवान्-ही-भगवान् हैं, ऐसी समाधिमें वे घंटों डूबे रहते। अरुणोदयके पूर्व उठकर शौच, स्नान आदि नित्य क्रिया करते और घर लौटनेपर जबसे यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया था, तबसे विधिपूर्वक संध्या-वन्दन करके गायत्रीका जप करते। सूर्योदयके समय भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते और भगवान्‌के मङ्गलमय नामोंका उच्चारण करते हुए गुरुजनोंकी वन्दना करते। सुरुचिके साथ उनका सद्व्यवहार अत्यन्त ही प्रशंसनीय था। वे सुरुचिके हृदयसे कृतज्ञ थे; क्योंकि उसीके कहनेसे भगवान्‌की आराधनामें उनकी रुचि हुई थी। सुरुचिने किस भावसे वह बात कही थी, इसपर ध्रुवकी कभी दृष्टि ही

न गयी। वे सदा सुनीतिसे पहले सुरुचिका सम्मान करते और उसकी सेवा अपने हाथों ही करते।

उन दिनों सुनीतिका हृदय हर्षसे भर रहा था। सारी पृथ्वीका सम्राट् अपना पति है, सारे विश्वके स्वामी भगवान्‌का अनुग्रह अपने पुत्रपर प्रकट है। पुत्र भक्त, विनयी और सेवापरायण है। माताको और क्या चाहिये ? वह ध्रुवको अपनी गोदीमें बैठाकर उनकी तपस्या, उनके भगवद्दर्शन और उनकी अनुभवकी बातें पूछतीं। ध्रुव बड़े ही प्रेमसे माताकी आज्ञाका पालन करते और भगवान्‌ने किस प्रकार पद-पदपर उनपर अपनी कृपा प्रकट की, इसका वर्णन करते हुए तन्मय हो जाते। नारद और सप्तर्षियोंके दर्शनके पहले ध्रुवकी जैसी मानसिक स्थिति थी, उसका वर्णन सुनकर सुनीतिकी आँखोंमें आँसू आ जाते। तपस्यामें निराहार रहनेकी बात सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य होता कि मेरा नन्हा-सा बालक इतनी कठिन तपस्या कैसे कर सका। वह विघ्न करने-वालोंमें अपना स्वरूप धारण करके आनेवालोंकी बात सुनकर सोचती कि देवता भी कितने छली होते हैं। क्या ध्रुवको धोखा देनेके लिये मैं ही मिली। भगवान्‌के दर्शनकी बात सुनकर सुनीतिका रोम-रोम खिल उठता और वह भगवान्‌के दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो जाती। अनायास ही उसके मुँहसे भगवान्‌के नाम निकलने लगते। उसका हृदय आनन्दातिरेकसे उमड़ जाता।

ध्रुव और उत्तम प्रायः साथ ही रहते। ध्रुवकी रहन-सहन, उनकी भाव-भक्ति देखकर सारी प्रजा उनपर अनुरक्त थी। ध्रुवके हृदयमें, आँखोंमें भगवान् समाये हुए थे। उनसे जो भी मिलता, उसे वे भगवत्-रूपमें ही देखते। इसीसे उनके व्यवहारमें प्रेम,

शान्ति, सद्भाव और सेवा हमेशा ही रहती। उनके मुँहसे कभी कटु भाषण नहीं होता, किसीके प्रति दुर्व्यवहार नहीं होता और किसीपर क्रोध नहीं आता। इसका कारण क्या था ? एकमात्र यही कारण था कि ध्रुवके हृदयमें भगवान् थे और वे सबके हृदयमें भगवान्‌का दर्शन करते थे।

सारा संसार अशान्तिसे ऊब गया है। सब चाहते हैं कि संसारमें शान्ति स्थापित हो। उन्हें आँखें खोलकर देखना चाहिये और बुद्धिको निर्मल करके समझना चाहिये कि सर्वत्र भगवद्भावसे बढ़कर शान्तिका और कोई साधन नहीं है। एक-दूसरेपर अविश्वास करते रहें, एक-दूसरेको धोखा देनेकी चेष्टामें रहें, एक-दूसरेकी उन्नतिसे ईर्ष्या करते रहें और मुँहसे कहें कि संसारमें शान्ति स्थापित हो जाय तो यह कदापि सम्भव नहीं है। शान्ति-स्थापनके लिये एकको दूसरेसे निश्छल प्रेम करना होगा, एकको दूसरेपर विश्वास करना होगा और एकको दूसरेसे सहानुभूति रखनी होगी। यह सचाई, यह प्रेमभाव केवल आस्तिकतामें ही रह सकते हैं, केवल भगवान्‌पर विश्वास करनेसे ही रह सकते हैं। नास्तिक संसार-शान्ति-स्थापनका चाहे जितना प्रयत्न करे, वह असफल होगा, असफल होगा, यह निश्चयपूर्वक घोषणा की जा सकती है। शान्ति-स्थापनके प्रयत्नमें केवल आस्तिक ही सफल होंगे, केवल भगवान्‌पर विश्वास करनेवाले ही सफल होंगे, केवल वे ही सर्वत्र भगवान्‌की दृष्टिसे सबसे निश्छल प्रेम करनेमें सफल होंगे।

प्रजापर ध्रुवका एकाधिपत्य था। प्रजा उन्हें प्राणोंसे प्यारी थी और प्रजा उनपर पूर्ण विश्वास रखती थी। ध्रुव अभी राजा नहीं

थे, शासनसत्ता पूर्णतः उनके हाथमें नहीं आयी थी, फिर भी प्रजाके कर्त्ता, धर्त्ता, विधाता सब कुछ वही थे। सब उनके निष्कपट व्यवहार और स्वार्थहीन सेवाके कायल थे। प्रजाके साथ व्यवहार करते हुए भी ध्रुव भगवान्‌का स्मरण रखते थे। माता-पिताके भोजनके पश्चात् उत्तमके साथ भगवान्‌का प्रसाद पाते और संत एवं विद्वानोंसे भगवान्‌के महत्त्व, प्रभाव आदिकी बातें सुनते। समयपर सन्ध्या आदि करके रातमें भगवान्‌का ध्यान करते-ही-करते सो जाते और स्वप्नमें भी भगवान्‌का ही दर्शन करते। जगत्‌का व्यवहार तो केवल भगवान्‌की आज्ञासे ही करते, उनका हृदय निरन्तर भगवान्‌में लगा रहता।

युवावस्था होनेपर माता-पिताके आग्रहसे ध्रुवके भी दो विवाह हुए। एक पत्नीका नाम था भ्रमि; वह प्रजापति शिशुमारकी पुत्री थी और दूसरी पत्नीका नाम था इला; यह वायुकी पुत्री थी। इन दोनोंके साथ भक्तराज ध्रुव आनन्दपूर्वक रहने लगे। अपने पुत्रको नवोढा पत्नियोंके साथ सुखी देखकर माता-पिताके हृदयमें बड़ा ही आनन्द हुआ। वे इसे परमात्माका परम अनुग्रह मानकर बारंबार भगवान्‌की कृपाका अनुभव करने लगे और उनके स्मरणमें तल्लीन रहने लगे।

राजा उत्तानपादकी अवस्था अब ढल चुकी थी। प्रजा-पालनकी कोई चिन्ता थी ही नहीं; क्योंकि ध्रुव इस कामके लिये पूर्णतः योग्य थे। उन्होंने सोचा कि इतने दिन तो भगवान्‌को प्राप्त किये बिना बीत ही गये, अब यह बुढ़ापा भी यों ही बीत जाना चाहता है। जो दिन बीत गये, उनकी चिन्तासे तो क्या लाभ है, अब अगले दिनोंको भजनमें ही बिताना चाहिये। जिन विषयोंको

भोगते-भोगते मैं इतने दिनोंतक तृप्त नहीं हो सका, उनसे अब तृप्त हो जाऊँगा, यह आशा कैसे की जा सकती है? यह विषयोंकी लालसा कैसी धधकती हुई आग है, इसमें जितनी आहुति डालो, उतना ही अधिक यह प्रज्वलित होती जाती है। मैं सारी पृथ्वीका सम्राट् हूँ; फिर भी मुझे सन्तोष नहीं। यदि मैं त्रिलोकीका स्वामी होता तो भी मुझे विषयोंके भोगसे तृप्ति न मिलती। अब इन विषयोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। इन आँखोंकी सफलता तो तब है, जब वे त्रिभुवन सुन्दर भगवान्‌की अनूप-रूप-राशिमें समा जायँ। अब ध्रुव राज्य करे, मैं वनमें चलकर भगवान्‌की आराधना करूँ।

ध्रुवके इतने दिनोंके सत्सङ्गसे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था, वे विषयोंकी असारता और भगवद्भजनकी सारवत्ता समझ गये थे। उनके मनमें पर्याप्त संयम और दृढ़ता आ गयी थी। उन्होंने सारी प्रजाके सामने ध्रुवके राजा होनेकी घोषणा की। प्रजाने उन्मुक्त हृदयसे ध्रुवका राजत्व स्वीकार किया और आनन्द मनाया। राजा उत्तानपाद सन्तोंमें जाकर आत्मविचार एवं भगवच्चिन्तनमें अपना समय बिताने लगे। ध्रुवका राज्य कितना सुन्दर हुआ होगा, इसकी कल्पना तो वर्तमान कालके अशान्तिमें पले हुए लोग कर ही नहीं सकते। क्योंकि वह भगवद्भावनाका राज्य था, प्रेमका राज्य था और अखण्ड शान्तिका राज्य था।

शास्त्रोंमें धर्मके दो प्रकार बतलाये गये हैं—एक सामान्य धर्म और दूसरा विशेष धर्म। सत्य, अहिंसा, प्रेम, भगवद्भक्ति—ये सब सामान्य धर्म हैं। इनका प्रत्येक देशमें, प्रत्येक कालमें और प्रत्येक व्यक्तिके द्वारा पालन किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिये। ये सार्वभौम धर्म हैं। जो धर्म किसी जातिके लिये हो, किसी देशके लिये हो, किसी समयके लिये हो, उसे विशेष धर्म कहते हैं। ब्राह्मणधर्म, क्षत्रियधर्म, वैश्यधर्म—ये सब विशेष धर्म हैं।

व्यावहारिक दृष्टिसे सामान्य धर्मको निर्विशेष धर्म अर्थात् विशेषणरहित धर्म कह सकते हैं। और विशेष धर्मको सविशेष धर्म अर्थात् विशेषणयुक्त धर्म कह सकते हैं। पहला केवल धर्म है और दूसरा अमुक धर्म है। सामान्य धर्म किसी भी विशेष धर्मका विरोध नहीं करता। परंतु विशेष धर्म कहीं-कहीं सामान्य धर्मका विरोध करता हुआ-सा दीखता है। वास्तवमें धर्मका स्वरूप अविरोधी ही है।* परंतु संतोंके जीवनकी यह विशेषता है कि वे सामान्यरूपसे दोनों प्रकारके धर्मोंका निर्वाह करते हैं।

ध्रुवके जीवनमें दोनों ही धर्मोंकी पूर्णता थी। वे सत्य, अहिंसा, प्रेम और भक्तिके मूर्तिमान् आदर्श थे तथा क्षत्रियोचित तेज, शौर्य और युद्धवीरताकी भी उनमें पूर्ण प्रतिष्ठा थी। परंतु एक सरल भक्तके जीवनमें युद्धके लिये अवसर ही कब आ सकता है। उन्होंने अनेकों यज्ञ किये, परंतु कभी युद्धका अवसर

---

* धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मकः।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिपुङ्गव॥

न आया, किसीके प्रति उनके मनमें वैर-भाव था ही नहीं, उनके साथ कोई युद्ध करता कैसे? युद्ध तो लोग उसीसे करते हैं, जिसके मनमें वैर-भाव रहता है।

ध्रुवके जीवनमें और दीर्घकालव्यापी जीवनमें, जिसका परिमाण छत्तीस हजार वर्ष है, केवल एक बार युद्धका प्रसङ्ग आया है। उस समय ध्रुवका जो अस्त्र-कौशल प्रकट हुआ, जो वीरता उन्होंने दिखायी, वह केवल भगवान्‌की ही सहायतासे प्राप्त हो सकती है, अन्यथा उसका अंशमात्र प्राप्त करना भी साधारण लोगोंके लिये असम्भव है। बात यह थी कि ध्रुवका भाई उत्तम शिकार खेलनेके लिये गया हुआ था, उन दिनों शिकारकी बड़ी प्रथा थी और उत्तमको इसका व्यसन हो गया था। उधर कहीं यक्षोंसे मुठभेड़ हो गयी और उनके हाथों वह मारा गया। प्राणियोंकी हत्या करनेवालोंकी यह दशा होनी ही चाहिये। ममताके कारण उत्तमकी माता भी कुछ लोगोंको साथ लेकर उसे ढूँढ़नेके लिये जंगलमें गयी और आग लग जानेसे वह वहीं जल गयी। ध्रुवको जब इन बातोंका पता चला तब उन्होंने उत्तमको मारनेवालोंकी जाँच करनेके लिये उधरकी यात्रा की।

पृथ्वीके सम्राट् ध्रुव जब उधर गये तब चाहिये तो यह था कि यक्ष इनसे क्षमा माँगें और इनका सत्कार करें; परंतु बात उलटी हुई, वे ध्रुवसे भिड़ गये। शासनकी दृष्टिसे उन्हें अपने काबूमें करना न्यायोचित था। ध्रुवने भगवान्‌का स्मरण करके युद्ध प्रारम्भ किया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ, यक्षोंने बड़ी क्रूरतासे प्रहार किये। ध्रुव उनसे घिर गये। उस समय ऋषि और मुनि वहाँ आ-आकर ध्रुवके कल्याणकी प्रार्थना करने लगे। ऋषियोंने

आशीर्वाद दिया—'ध्रुव! वे शार्ङ्गधारी भक्तवत्सल भगवान् तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हारे विपक्षियोंका शासन करें, जिनका नामोच्चारण करके संसारके लोग बड़ी ही सुगमतासे शीघ्र ही दुस्तर मृत्युको पार कर जाते हैं।'*

ऋषियोंके आशीर्वादसे ध्रुवकी शक्ति और भी बढ़ गयी। उन्होंने नारायणास्त्रका सन्धान किया। यक्षोंके विनाशका समय उपस्थित हो गया। उनके सब मायाजाल छिन्न-भिन्न हो गये, उनके अस्त्र-शस्त्र और घातक प्रयोग नारायणास्त्रके सम्मुख क्षणभरमें ही निष्फल हो गये। भगवान्ने ध्रुवके पितामह स्वायम्भुव मनुके हृदयमें प्रेरणा की और वे युद्ध-भूमिमें ध्रुवके पास आये। उन्हें देखते ही ध्रुवने रथसे उतरकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये, मानो आज्ञाकी प्रतीक्षामें हों। स्वायम्भुव मनुने युद्ध-भूमिमें ही एक बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया।

उन्होंने कहा—'युद्ध केवल स्वार्थके कारण ही होता है। जिनका भगवान्पर विश्वास है, जो सबके हृदयमें भगवान्का दर्शन करते हैं, उनमें भला युद्धकी रुचि, युद्धकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? सारी सृष्टि स्वयं ही संसारकी ओर बढ़ रही है। महाकाल स्वयं सबको भक्षण कर रहा है; ऐसी स्थितिमें

---

* औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान्।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम्॥
(श्रीमद्भा० ४। १०। ३०)

भगवान्‌का स्मरण करके अपना कालयापन करना चाहिये। ध्रुव! तुम मेरे पौत्र हो, तुमने यह क्या किया? माना कि यक्षोंने कुछ अनुचित कर दिया था; परंतु क्या तुममें वह सहन करनेकी शक्ति नहीं थी? अब छोड़ दो यह काम, यक्षोंका विनाश मत करो। इनका दोष मत देखो। इनपर अविश्वास मत करो, इनमें भगवान्‌का दर्शन करो। तुम तो भगवान्‌के परम प्यारे भक्त हो।'

स्वायम्भुव मनुकी बात सुनते ही ध्रुवने युद्ध बंद करनेकी घोषणा कर दी। ध्रुव-जैसा भक्त अपने गुरुजनोंकी आज्ञा माननेमें भला कब आनाकानी कर सकता है। युद्ध बंद हो गया और यक्षोंके अधिपति कुबेर स्वयं ध्रुवके पास आये। ध्रुवने उनका स्वागत किया। उनके सामने अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये। कुबेरने कहा—'ध्रुव ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी क्षत्रियोचित वीरतासे मुझे बड़ा ही सन्तोष प्राप्त हुआ है। तुममें भगवद्भक्ति आदि सामान्य धर्म तो हैं ही, क्षत्रियधर्म भी तुममें पूर्णरूपसे विद्यमान है; जो हुआ सो हुआ। यों व्यावहारिक दृष्टिसे तो मेरे यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा और तुमने मेरे यक्षोंको। परंतु वास्तवमें किसीने किसीको नहीं मारा। यह भगवान्‌की इच्छाका मन्त्र, यह प्रकृतिका चक्र यों ही चल रहा है, इसमें हर्ष-शोकका स्थान नहीं है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो मुझसे वर माँग सकते हो।'

ध्रुवने कहा—'भगवन् ! मुझे और क्या चाहिये ? आप-लोगोंकी कृपासे भगवान्‌का निरन्तर स्मरण होता रहे; भगवान्‌के चरणोंमें निरन्तर प्रेम बना रहे, यही चाहता हूँ। कुबेरने 'एवमस्तु'

कहकर आशीर्वाद दिया। स्वायम्भुव मनु अपने लोकमें चले गये। कुबेर अन्तर्धान हो गये और ध्रुव अपनी राजधानीमें आये।

ध्रुवके यहाँ बराबर यज्ञ-यागादि चलते ही रहते थे। बड़े-बड़े संत उनके पास आया करते थे और वे बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे सबका सम्मान करते थे। ध्रुव स्वयं भी तीर्थोंमें जाया करते थे और सभी देवी-देवताओंको अपना इष्टदेव ही समझकर पूजा करते थे। काशी-प्रभास आदि क्षेत्रोंमें उनके द्वारा प्रतिष्ठापित बहुत-सी मूर्तियाँ अब भी विद्यमान हैं। विष्णु और शिवमें तनिक भी भेद-बुद्धि उनके मनमें नहीं थी। उनकी दृष्टिमें विष्णुके हृदय शिव और शिवके हृदय विष्णु हैं। प्रभासक्षेत्रमें बहुत दिनों रहकर उन्होंने अपने ही द्वारा स्थापित शिवलिङ्गकी पूजा की थी। वे स्वयं ही वनमेंसे फूल चुन-चुनकर ले आते, उनके मन्त्र पढ़कर एक-एक फूल अलग-अलग बड़े प्रेमसे चढ़ाते और अनेक दास-दासियोंके रहनेपर भी वे वनसे स्वयं ही कन्द-मूल-फल ले आते तथा भगवान् शङ्करको अर्पित करके प्रसाद पाते। नित्य ही षोडशोपचारसे पूजा करके उनके मन्त्रका जप एवं उनकी प्रार्थना करनेका उनका नियम था।

एक दिन भगवान् शङ्करकी प्रार्थना करते-करते ध्रुव तन्मय हो गये। उनकी दृढ़ निष्ठा और अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर स्वयं पधारे। उन्होंने ध्रुवसे कहा—'प्यारे ध्रुव ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ। मेरा दर्शन करो और तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे माँग लो।' ध्रुवने देखा कि भगवान् शङ्कर सामने खड़े हैं। उनके जटा-जूटपर गङ्गाकी धवल धारा बह रही है, ललाटपर चन्द्रमा चमक रहा है और श्वेत

शरीरपर काले-काले नाग लिपट रहे हैं। हाथमें त्रिशूल और मुस्कराता हुआ मुखमण्डल देखकर ध्रुवका प्रेम एवं उत्साह और भी बढ़ गया। उन्होंने बड़े प्रेमसे स्तुति की तथा चरणोंमें गिरकर निवेदन किया कि 'प्रभो! मुझे ब्रह्मपद, स्वर्ग अथवा लौकिक विषयोंकी लेशमात्र भी अभिलाषा नहीं है, ये सब लोक तो स्वयं ही जन्म-मृत्युकी चक्कीमें पिस रहे हैं। प्रभुके चरणोंमें मेरी अटल भक्ति बनी रहे, यही आशीर्वाद दीजिये। भगवान् शङ्कर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।'

ध्रुवकी महिमाका और क्या वर्णन किया जाय? उनके हृदय-मन्दिरमें आठों याम भगवान् प्रकट रहते थे। वे अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करके पुनः अपनी राजधानीमें लौट आये और भगवान्का स्मरण करते हुए राज-काजमें लग गये।
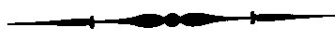
जैसे प्राणियोंके शरीरसे आरोग्य और रोगके कीटाणु निकला करते हैं और आस-पासके लोगोंपर प्रभाव डालते हैं, वैसे ही सत्य, अहिंसा, प्रेम, भक्ति आदिके चिदणु भी बाहर निकला करते हैं तथा मिलने-जुलनेवालोंपर अपना प्रभाव डालते हैं। कोई अपनेको गुप्त नहीं रख सकता, सभीके शरीरसे तन्मात्राएँ निकलती हैं और वायुमण्डलको अपने अनुकूल बनाती हैं। संतोंके शरीरसे भी निरन्तर सद्भावनाओंका प्रसार होता रहता है और उनके सम्पर्कमें रहकर कोई असंत हो नहीं सका। एक यह भी कारण है कि लोगोंने सत्सङ्गको इतना महत्त्व दिया है। किसीको पहचानना हो तो उसके आस-पासके लोगोंद्वारा उसे पहचाना जा सकता है।

ध्रुवकी दो स्त्रियाँ थीं। भ्रमिसे कल्प और वत्सर नामके दो पुत्र हुए थे। इलासे एक पुत्र हुआ था उत्कल। उत्कल ध्रुवका ज्येष्ठ पुत्र था और वह प्रायः ध्रुवके साथ ही रहता था। ध्रुवकी श्रद्धा-भक्तिका उसपर इतना प्रभाव पड़ा था कि जन्मसे ही उसकी चित्तवृत्तियाँ शान्त थीं और किसी विषयमें उसकी आसक्ति नहीं थी। वह ध्रुवके पास बैठकर भगवत्तत्त्वके सम्बन्धमें अनेकों प्रकारकी बातें पूछता और सुनता। ध्रुवने भी कठिन-से-कठिन तत्त्वको उसे इस प्रकार हृदयङ्गम करा दिया था कि सारा संसार उसे अपने-आपमें दीखता और वह अपने-आपको सबमें व्याप्त देखता। उसकी दृष्टि सम हो गयी और वह एकरस आत्माके चिन्तनमें ही मस्त रहता था।

ध्रुवके दूसरे पुत्र कल्प और वत्सर भी बड़े ही सदाचारी एवं

भगवद्भक्त थे। वे भी ध्रुवकी शिक्षाके प्रभावसे भगवान्‌की आज्ञा समझकर अपने कर्तव्यका पालन करते थे। ध्रुव न केवल तीनों पुत्रोंको ही बल्कि सम्पूर्ण जगत्‌को समान दृष्टिसे, भगवद्‌दृष्टिसे देखते थे। पुत्रोंका समयपर उन्होंने यथोचित संस्कार किया और वे युवक हुए।

ध्रुवने देखा, राज्य करते-करते छत्तीस हजार वर्ष बीतनेपर आये। भगवान्‌की आज्ञाका यथाशक्ति पालन करनेकी चेष्टा की गयी। अब भगवान्‌के चिन्तन बिना एक क्षण बिताना भी असह्य हो रहा है। उनके ही भजनमें सम्पूर्ण शक्ति लग जानी चाहिये। मन भगवान्‌का स्मरण करता है; परंतु शरीर तो व्यवहारमें लगा है न। अब ऐसा करना चाहिये कि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, सम्पूर्ण प्राण, सम्पूर्ण मन और सम्पूर्ण बुद्धि भगवान्‌के भजनमें ही लग जायँ। आत्मा भजनमय ही हो जाय। चाहे ऊपर-ऊपर ही भेद-दृष्टि हो; परंतु उसे क्यों प्रश्रय दिया जाय। उन्होंने सोचा, जगत्‌के व्यवहारोंमें क्या रखा है, करते-करते युग बीत गये, इनमें क्या रस है ? कुछ पता नहीं चलता। अनादिकालसे सृष्टिकी परम्परा यों ही चल रही है, आना-जाना, सुख-दुःख और पाप-पुण्यके द्वन्द्वमें सब उलझे हुए हैं, क्या जीवनका यही प्रयोजन है ?

ध्रुव सोचते ही गये। उन्होंने निश्चय किया कि अब ऐसा साधन किया जाय, ऐसा भजन किया जाय कि केवल भजन-ही-भजन रहे। न अपनी स्मृति रहे, न किसी प्राप्तव्यकी स्मृति रहे। केवल भजनकी ही स्मृति रहे। अर्थात् साधक और साध्य दोनों ही जिस भजनमें अन्तर्भूत हो जायँ वही सर्वोत्कृष्ट भजन है और भजनका लक्ष्य, भजनका वास्तविक स्वरूप भी वही है।

'भजनका लक्ष्य स्वयं भजन ही है' यह बात जो भूल जाते हैं, वे ही नाना प्रकारके फलोंके लिये भटकते रहते हैं और उन्हें अपने भजनसे सन्तोष नहीं होता। यही निष्काम भजन है, यही तत्त्वज्ञानीका भजन है और इसे ही पूर्ण भक्तिनिष्ठा कहते हैं। तो अब आजसे ऐसा ही भजन होना चाहिये। ध्रुवने निश्चय कर लिया।

निश्चय करनेभरकी ही देर थी, उन्होंने राजकाजका भार पुत्रको सौंपा। गुरुजनों और ब्राह्मणोंसे अनुमति ली और विशालाकी यात्रा कर दी। उनके जानेके पश्चात् राज्यका उत्तराधिकार उत्कलको ही मिलना चाहिये था और मिला भी; परंतु उत्कलने उसे सम्हाला नहीं। वह दिन-रात भगवान्में, अपने-आपमें मस्त रहता था। साधारण लोग उसे पागल समझते थे, वह राज-काजका निर्वाह क्या करता। मन्त्रियोंने सर्वसम्मतिसे और प्रजाकी अनुमतिसे वत्सरको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे योग्यताके साथ अपने पिताकी भाँति राज्यका कार्य करने लगे।

ध्रुव विशाला पहुँचे। वहाँ स्नानादिसे निवृत्त होकर आसन बाँधकर, प्राणोंको रोककर, मनोवृत्तियोंको समेटकर वे भगवान्के विराट् रूपमें तल्लीन हो गये। थोड़ी ही देरके बाद उनके सामनेसे भगवान्का विराट् रूप हट गया और भगवान्के दिव्य अप्राकृत विग्रहको देख-देखकर वे मुग्ध होने लगे। उनके हृदयमें प्रेमकी धारा बहने लगी। आँखोंसे आनन्दके आँसू उमड़ पड़े। शरीर पुलकित हो गया। शरीरका बन्धन टूट गया और अपने-आपको भूलकर वे भजनस्वरूप भगवान्में तन्मय हो गये।

कुछ समयके बाद उन्हें ऐसा जान पड़ा कि आकाशमें एक दूसरे ही चन्द्रमा उग रहे हैं। दिशाओंमें दिव्य प्रकाश फैल गया है और बड़ी ही मीठी ध्वनि कानोंमें अमृत उड़ेल रही है। वे मानो भगवान्का स्पर्श प्राप्त करने लगे। इसी समय एक विमान उनके सामने उतरता हुआ-सा दीख पड़ा। उन्होंने देखा कि बड़े ही सुन्दर श्यामवर्णके चतुर्भुज पीताम्बरधारी दो पार्षद उस विमानपर बैठे हुए हैं। उनकी अवस्था किशोर है, आँखें कमलकी-सी हैं और उनके दिव्य आभूषण उस विमानके प्रकाशमें भी पूर्णतः जगमगा रहे हैं। ध्रुव भगवान्के पार्षदोंको देखकर उठ खड़े हुए और भगवान्के नामोंका उच्चारण करते हुए दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने पार्षदोंको नमस्कार किया। उन्हें देखकर ध्रुव भगवान्की स्मृतिमें और भी तल्लीन हो गये। उनका सिर नम्रतासे झुक गया।

उन पार्षदोंने, जिनका नाम सुनन्द और नन्द था, मुसकराते हुए ध्रुवके पास जाकर कहा—'ध्रुव ! तुम्हारा कल्याण हो। तुमने पाँच वर्षकी अवस्थामें जिन भगवान्को प्रसन्न किया था, हम उन्हींके पार्षद हैं। उनकी आज्ञासे हम तुम्हें विष्णुपदमें ले चलनेके लिये आये हुए हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी और योगी जिस पदकी प्राप्तिके लिये अनेकों प्रकारकी साधनाएँ करते रहते हैं, समस्त ग्रह, नक्षत्र, सप्तर्षि और ताराएँ जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, तुम्हारे पूर्वजोंने अथवा अन्य किसीने अबतक जिस पदकी प्राप्ति नहीं की है, हम तुम्हें उस पदपर ले चलनेके लिये आये हुए हैं। तुमने भगवान्की आराधनासे वह पद प्राप्त किया है। आओ, प्रेमसे इस श्रेष्ठ विमानपर आरोहण करो।'

पार्षदोंकी वाणी सुनकर ध्रुवने स्नान किया, नित्यकर्म किये, मुनियोंको प्रणाम करके आशीर्वाद लिये, विमानकी परिक्रमा की, उसकी पूजा की, पार्षदोंकी वन्दना की और फिर वे उस विमानपर आरोहण करने लगे। उस समय काल उनके सामने आया। उन्होंने मृत्युके सिरपर पैर रखकर उस दिव्य विमानपर सवारी की। आकाशमें नगारे, मृदङ्ग और सिंगे बजने लगे, गन्धर्व गायन करने लगे और दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी।

पार्षदोंने देखा कि ध्रुव किसी चिन्तामें पड़े हुए हैं। उनकी आकृतिसे स्पष्ट मालूम हो रहा था कि अभी उन्हें कोई काम करना बाकी है। भगवान्‌के पार्षदोंसे क्या छिपा रहता ! उन्होंने ध्रुवका हृदय देख लिया। वे अपनी माताके लिये चिन्तित हो रहे थे। पार्षदोंने हँसकर कहा—'ध्रुव ! क्या तुम अपनी माताके लिये चिन्तित हो रहे हो? क्यों न हो, तुम्हारे-जैसा भक्त अपनी माताकी चिन्ता क्यों न करे? जिस माताने दस महीनेतक गर्भमें धारण किया, अनेकों कष्ट सहकर बचपनमें पालन-पोषण किया और जिसकी शिक्षा-दीक्षासे प्रभावित होकर भगवान्‌को प्राप्त किया, जिसके स्नेह-ममता-प्रेमके फलस्वरूप ही यह स्थान तुम्हें प्राप्त हो रहा है, उसके लिये चिन्ता होनी स्वाभाविक ही है।

'परंतु चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है, तुम्हारे-जैसे पुत्रकी जननी कभी कल्याणसे वञ्चित रह ही नहीं सकती। देखो, वह तुमसे पहले विमानपर सवार होकर आगे-आगे जा रही है। वह तुम्हारे साथ ही रहेगी।' पार्षद ध्रुवसे भगवान्‌के गुण, उनकी लीलाका वर्णन कर रहे थे और उनका विमान ऊपर उठ रहा

था। स्थान-स्थानपर विमानपर चढ़कर देवताओंने स्वागत किया। वे ग्रह और सप्तर्षियोंसे ऊपर विष्णुपदपर पहुँच गये।

ध्रुवको जो पद प्राप्त हुआ, वह अपने प्रकाशसे ही प्रकाशित होता रहता है। जो सब प्राणियोंपर प्रेम रखते हैं, दुःखियोंपर दया रखते हैं और भगवान्के चरणोंमें अनन्य प्रेम रखते हैं, केवल वे ही इस पदपर पहुँच सकते हैं। भगवान्की अपार कृपासे ही ध्रुव-जैसा जीवन, ध्रुव-जैसा भजन और ध्रुव-जैसी गति प्राप्त होती है। जैसे भगवान्ने पद-पदपर ध्रुवकी रक्षा की, ध्रुवकी अभिलाषा पूर्ण की, वैसे ही यदि हम भी भगवान्की ओर चलें, वैसे ही उत्साह और भजनको अपनावें तो वे अवश्य ही ध्रुवके समान ही हमारी सहायता करेंगे और वे तो करनेके लिये सर्वदा उत्सुक रहते ही हैं।

कल्पभरतक ध्रुव उस स्थानमें रहकर भगवान्की लीलाका अनुभव करते रहेंगे और उसके बाद उन्हें सायुज्य-मुक्ति प्राप्त होगी।

बोलिये भक्त और भगवान्की जय!